**SHODH SAMAGAM**

**ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)**

# छत्तीसगढ़ में आदिवासियों का विद्रोह

**विनिता सिन्हा,** शोधार्थी, इतिहास विभाग
**अवधेश्वरी भगत,** Ph.D., इतिहास विभाग
श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

**ORIGINAL ARTICLE**

**Authors**
**विनिता सिन्हा**
**अवधेश्वरी भगत,** Ph.D

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 09/08/2023
Revised on : -----
Accepted on : 16/08/2023
Plagiarism : 05% on 09/08/2023

## शोध सार

*प्रस्तुत शोध आलेख ''छत्तीसगढ़'' में आदिवासियो का विद्रोह' अंचल में ही नही प्रत्युत राज्य एवं देश में भी एक विशिष्ट महत्व है। मध्यप्रदेश में आदिवासियों की संख्या सर्वाधिक रही है। अलकेला अस्तर जिला केरल राज्य व ओल्जियम, फिलिपाईन्स, इजरायल जैसे देशों से भी क्षेत्रफल में विशाल है। इसके अतिरिक्त झाबुआ, मण्डला, सरगुजा, व रायगढ़ आदिवासी बहुल जिलें हैं। ब्रिटिश एवं मराठा शासन के अत्याचार से बस्तर के परलकोट क्षेत्र में अबूझमाड़ आदिवासियसो के साथ लूटखसोट, शोषण एवं अत्याचार सैनिकों द्वारा किया जाने लगा, तब अबूझमाड़ियों आदिवासियों के द्वारा परलकोट के जमींदार गेंदसिंह के नेतृत्व में अबूझमाड़ियों ने मराठों को रसद आपूर्ति में सहायक बंजारों को लूटा, मराठों और अंग्रेजों पर आक्रमण किये। 24 दिसम्बर 1824 को मराठों एवं अंग्रेज अधिकारियों के शोषण नीति के विरुध्द जमींदार गेंदसिंह के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। 20 जनवरी 1825 को परलकोट के जमींदार गेंदसिंह को फांसी दे दी गई।*

## मुख्य शब्द

*आदिवासी, विद्रोह.*

## प्रस्तावना

भारत अपने आदिवासी या आदिवासी निवासियों के लिए जाना जाता है। आदिवासी शब्द का अर्थ है कि वे भूमि के पहले या मूल निवासी थे, मूल निवास स्थान, मिट्टी के मूल निवासी थे। नदियों ने एक जनजाति को एक साधारण प्रकार के समाजिक समूह के रुप में परिभाषित किया है, जिसके सदस्य एक सामान्य बोली बोलते है, और कल्याण जैसे सामान्य उद्देश्य के लिए एक साथ कार्य करते है। जनजातियों एक निश्चित निवास

स्थान और क्षेत्र में रहती है। एक सामाजिक संगठन द्वारा एकीकृत रहती है जो मुख्य रुप से रक्त संबंध, सांस्कृतिक, समरुपता, देवताओं और सामान्य पूर्वजों की एक सामान्य योजना और एक सामान्य लोक विद्या के साथ एक सामान्य बोली पर आधारित होती है। उनका निवास स्थान और संस्कृति न केवल उन्हें स्वतंत्रता, आत्म पहचान और सम्मान की भावना प्रदान करती है, बल्कि यह उन्हें जमींदरों, राजाओं, अंग्रेजों और अन्य बाहरी लोगो के द्वारा किसी भी प्रकार के शोषण, उत्पीड़न और उत्पीड़न के खिलाफ एकजुट होने का शक्ति भी प्रदान करती है। एक परिणाम के रुप में भारत का जनजातीय इतिहास शोषकों के खिलाफ विद्रोह का कहानियों साथ–प्रचुर मात्रा में है जब भी ऐसा अवसर आया (विल्सन 1973)।

आजादी से पहले, आदिवासी विद्रोह, मुख्य रुप से विदेशी शासकों के खिलाफ खड़े थे। महापात्रा (1972) के अनुसार अधिकांश जनजातीय आंदोलनो की उत्पति धार्मिक उथल–पुथल में हुई थी। वैष्णवादी आंदोलन मणिपुर में मैथई जनजाति, पश्चिम बंगाल में भूमिज, असम में नाक्टे, नागा, उड़िसा में बथुडी और झारखण्ड (बिहार), उड़िसा और दक्षिण भारत में आदिवासियों के बीच जाए जाने वाले महत्वपूर्ण धार्मिक आंदोलनों में से एक थे। ये मध्य भारत में गोंड़ उड़ीसा में कोंध और राजस्थान में भील में भी पाए जाते थे। औपनिवेशीकरण के शुरुवाती वर्षो में, कोई अन्य समुदाय और यहाँ तक कि भारत में इतने सारे राजवंशों के शासकों ने ब्रिटिश शासन के लिए इस तरह के वीरतापूर्ण प्रतिरोध को आगे नहीं बढ़ाया और दुखद परिणामों का सामना किया जैसा कि वर्तमान झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और बंगाल के कई सलाहाकारे या आदिवासी समुदायों ने किया। शाह (1977) ने कहा है कि बिहार, बंगाल, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ में जमींदारों सूदखारों और पुलिस और वन अधिकारियों द्वारा उत्पीड़न के खिलाफ भी आंदोलन हुए थे। उदाहरण के लिए छोटानागपुर के ओरांव, राजस्थान के भीलों आदि में भगत आंदोलन पाए गए (बोस 1975: 64–71)। ये भी पशु आहार, शराब और रक्त बलिदान से बचने के लिए पुनरुत्थान आंदोलन थे। इसके अलावा, मुंडा सुधारवादी आंदोलन भी एक शक्तिशाली करिश्माई नेता धरती आबा के तहत रिपोर्ट किया गया था, जिन्होंने अनुष्ठान शुद्धता, नैतिकता और तपस्या के हिन्दू आदर्शों का प्रचार किया और पुजारियों की पूजा की आलोचना की (सिंह 1985)

आदिवासियों के दो महत्वपूर्ण संसाधनों भूमि और जंगल का विलुप्त होना कई जनजातीय आंदोलानो के केन्द्र में था। खाक्सा (2012) ने तर्क दिया है कि ब्रिटिश शासन और प्रशासन के आने के साथ जनजातियो के भूमि अधिकारों पर क्षरण शुरु हो गया था। यह उन ताकतों के संयोजन द्वारा लाया गया था जो ब्रिटिश काल के दौरान काम कर रही थी। इनमें से महत्वपूर्ण भूमि में निजी संपत्ति की शुरुआत और बाजार की ताकतों की पैठ थी। इन दोनों ने मिलकर बड़े पैमाने पर जनजातियो और गैर–जनजातियों के लिए भूमि के हस्तांतरण का रास्ता खोल दिया, खास कर जब आदिवासी क्षेत्रों को सड़को और रेलवे से जोड़े जाने लगा। जिन तंत्रों के माध्यम से इसे हासिल किया गया गया था, वे धोखाधड़ी, छल, जबरदस्ती और सबसे व्यापक रुप से ऋण बंधन थे। आजादी के बाद के अवधि में भूमि हस्तांतरण का प्रमुख स्त्रोत गैर–जानजातियों का जनजातीय भूमि में इतना अधिक अतिक्रमण नहीं है, जितना कि विकास की प्रक्रिया है जिसका भारतीय राज्य ने इस अवधि के दौरान पालन किया है। खनिज संसाधनों का बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण और दोहन और सिंचाई बांधों का निर्माण और बिजली परियोजनाएं जो इस अवधि के दौरान जनजातीय क्षेत्रों में देखी गई है, आदिवासियों से भूमि के हस्तांतरण की तुलना में अधिक लोगों को अपनी भूमि से उखाड़ने वाले एकमात्र कारक रहे है। व्यक्तिगत आधार पर गैर–आदिवासियों के लिए इन मुद्दो ने भारत में माओवादी आंदोलनों की रुपरेखा को भी प्रभावित किया है (घोष 2015)।

चमर छोर पर मुक्ति के एजेंडे के लिए आदिवासी आंदोलन के उदाहरण है। हम इस श्रेणी के अंतर्गत नागा क्रांति, मिजो आंदोलन और गोंड राज आंदोलन के उदाहरणों को शामिल कर सकते है। इस प्रकार कुल मिलाकर भारत की जनजातियों ने विभिन्न प्रकार के आंदोलन चलाए है और ये मुख्य रुप से उनकी आजीविका, सामाजिक सांस्कृतिक सुरक्षा, उत्पीड़न और भेदभाव, उत्पेक्षा और पिछड़ेपन, गरीबी, भूख, बेरोजगारी और शोषण के मुद्दों से संबंधित थे।

## छत्तीसगढ़ का परिचय

छत्तीसगढ़ भारत का एक राज्य है। छत्तीसगढ़ राज्य का गठन 1 नवम्बर 2000 को हुआ था। यह भारत का 26 राज्य है। भारत में दो क्षेत्र ऐसे हैं जिनका नाम विशेष करणों से बदल गया– एक ते मगध जो बौध्द विहारों की अधिकता के कारण बिहार बन गया और दूसरा दक्षिण कौशल जो छत्तीसगढ़ों को अपने में समाहित रखने के कारण छत्तीसगढ़ बन गया। किन्तु ये दोनों ही क्षेत्र अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत की गौरवान्वित करते रहे है। छत्तीसगढ़ तो वैदिक और पौराणिक काल से ही विभिन्न संस्कृतियों के विकास का केन्द्र रहा है। यहाँ प्राचीन मंदिर तथा उनके भग्नावेश इंगित करते है कि यहाँ पर वैष्णव, शैव, शाक्त, बौध्द संस्कृतियों का विभिन्न कालों में प्रभाव रहा है।

आदिवासियों शब्द दो शब्दों ''आदि'' और ''वासी'' से मिल कर बना है और इसका अर्थ मूल निवासी होता है। भारत की पहली आदिवासी महिला राष्ट्रपति श्रीमती द्रौपती मुर्मू जी बनी। भारत की जनसंख्या का 8–6 प्रतिशत (10 करोड़ जो 2011) जनगणना के अनुसार है जिसमें धार्मिक अलग मान्यता की मांग के लिए नॉर्थ ईस्ट के 8 राज्य के लागों ने जनगणना का बहिष्कार किया था उससे डाटा काम आया है) आज अगर जनगणना की जाती है जब देश की जनता 140 करोड़ हो गए हैं इस अनुसार आज आदिवासियों का जनसंख्या 18–4 करोड़ के लगभग है जितना एक बड़ा हिस्सा आदिवासियों का है। पुरातन लेखो में आदिवासियों को अत्विका कहा गया है (संस्कृत ग्रन्थों में)। महात्मा गांधी ने आदिवासियों को गिरिजन (क्योकि अधिकतर आदिवासी लोग जंगल और पहाड़ पर रहने वाले लोग हैं जो जल, जंगल, जमीन के सांचे रखवाले है।) कह कर पुकारा है और वो ऐतिहासिक श्रोत के अनुसार मानते थे कि आदिवासी इंडिया के मूल निवासी है जो लोखों सालो से यहां रह रहे है। भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए अनुसूचित जनजाति पद का उपयोग किया गया है। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में आंध, गोंड, खरवार, मुण्डा, खड़िया, बोडो, कोल, भील, कोली, सहरिया, संथाल, भूमिज, उरांव,लोहरा, बिरहोर, पारधी, असुर, भील, भिलाला, मीना टाकणकार आदि।

चंदा समिति ने सन् 1960 में अनुसूचित जातियो के अंतर्गत किसी भी जाति को शामिल करने के लिये 5 मानक निर्धारित कियाः–

- भौगोलिक एकाकीपन।
- विशिष्ट संस्कृति।
- पिछड़ापन।
- संकुचित स्वभाव।
- आदिम जाति के लक्षण।

बहुत से छोटे आदिवासी समूह आधुनिकीकरण के कारण हो रहे पारिस्थितिकी पतन के प्रति काफी संवेदनशील है। व्यवसायिक वानकी और गहन कृषि दोनों ही उन जंगलों के लिए विनाशकारी साबित हुएं है जो कई शताब्दियों से आदिवासियों के जीवन यापन का स्त्रोत है।

## आदिवासी भाषाएं

भारत में सभी आदिवासी समुदायों की अपनी विशिष्ट भाषाएं है। भाषा वैज्ञानिकों ने भारत के सभी आदिवासियों भाषाओं को मुख्यतः तीन भषा परिवारों में रखा है– गोंडी द्रविड़, आस्ट्रिक और लेकिन कुछ आदिवासी भाषाएं भारोंपीय भाषा परिवार के अंतर्गत भी आती है। भाषाओं में ''भीली'' बालेने वालों की संख्या सबसे ज्यादा है जबकि दूसरे स्थान पर गोंडी भाषा और तीसरे स्थान पर संताली भाषा है। भारतीय राज्यों में एकमात्र झारखण्ड में ही 5 आदिवासी भाषाओं– संताली, मुण्डारी, हो, कुडुख और खड़िया–को 2011 में द्वितीय राज्यभाषा का दर्जा प्रदान किया गया।

आदिवासियों के धार्मिक विश्वास, आदिवासियों का अपना धर्म भी है। ये प्रकृति–पूजक हैं और वन, पर्वत, नदियों एवं सूर्य की आराधना करते है। आधुनिक काल में जबरन बाह्य संपर्क में आने के फलस्वरुप इन्होंने हिन्दू,

ईसाई एवं इस्लाम धर्म को भी अपनाया है। अंग्रेजी राज के दौरान बड़ी संख्या में ये ईसाई बने तो आजादी के बाद इनके हिंदूकरण का प्रयास तेजी से हुआ है, परन्तु आज ये स्वयं की धार्मिक पहचान के लिए संगठित हो रहे है, और भारत सरकार से जनगणना में अपने लिए अलग से धार्मिक कोड (कोया पुनेम) की मांग कर रहे है। माना जाए तो इनका धर्म हिन्दू धर्म से ज्यादा मेल खाता है, क्योकि आदिवासी और हिन्दू दोनो लोग शंभूसेक (महादेव) को अपना अस्तित्व मानने है।

भारत में 1871 से कलकेर 1941 तक हुई जनगणनाओं में आदिवासियों को अन्य धर्मों से अलग धर्म में गिना गया है जिसे एबओरिजिन्स, एबोरिजिनल, एनिमिस्ट, ट्राईबल रिलिजन या ट्राईब्स इत्यादि नामों से वर्णित किया गया है। हालाकि 1951 की जनगणना के बाद से आदिवासियों को अलग से गिनना बन्द कर दिया गया है।

भारत में आदिवासियों को दो वर्गों में अधिसूचित किया गया है– अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित आदिम जनजाति।

## प्रमुख आदिवासी व्यक्ति

बिरसा मुंडा, जयपाल सिंह मुंडा, राम दयाल मुंडा, गंगा नारायण सिंह, जगन्नाथ सिंह, रघुनाथ सिंह, कार्तिक उरांव, रानी दुर्गावती, राघोजी भांगरे, एकलव्य, दुर्जन सिंह, टट्या भील, राणा पूंजा।

## शोध कार्य उद्देश्य

1. भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में छत्तीसगढ़ में आदिवासी आंदोलन की भूमिका का अध्ययन करना।
2. छत्तीसगढ़ में आदिवासी विद्रोह प्रारंभ से 1857 तक कर अध्ययन करना।

## छत्तीसगढ़ में आदिवासी विद्रोह प्रारंभ

हल्बा विद्रोह 1774 ई. से 1777 ई.

नेतृत्व – अजमेर सिंह
शासक – दरियादेव
उद्देश्य– उत्तराधिकार हेतु
विशेष – प्रथम विद्रोह

### संक्षिप्त विवरण

यह छत्तीसगढ़ का प्रथम विद्रोह माना जाता है। यह विद्रोह डोंगर क्षेत्र में 1774 ई. से 1777 ई. तक चला। काकतीय शासक इस विद्रोह को रोकने में ससमर्थ रहे और वे मराठों के अधीन हो गए।

इतिहासकारों के अनुसार डोंगर क्षेत्र हलबाओं का स्वतंत्र राज्य हुआ करता था। डोंगर क्षेत्र को अपनी उपराजधानी बना कर बस्तर के राजा अपने पुत्रों को यहाँ का गवर्नर नियुक्त करने लगे। 1774 ई. में जब दरियादेव बस्तर का राजा बना तो उसने डोंगर क्षेत्र की उपेक्षा की तथा तत्कालीन गवर्नर अजमेर सिंह पर दबाव डालने लगा। डोंगर क्षेत्र की रक्षा के लिए कांकेर की सेना तैनात थे। दरियादेव की हार हुई और विद्रोह को मजबूत होता देख दरियादेव जैपुर भाग गया।

जैपुर में दरियादेव ने अंग्रजों, मराठों एवं जैपुर के राजा के साथ अलग–अलग संधि कर 20000 सैनिकों की सेना बना कर पापस हमला किया और जगदलपुर में विद्रोहियों को पराजित करने के बाद डोंगर पर हमला कर अजमेर सिंह को मार डाला। इसके बाद बड़े पैमाने पर हल्बा विद्रोहियों की हत्या की जिसमें से एक नर संघार को आज भी हल्बा लोग ताड़ झोकनी के रुप में याद करते है।

जैपुर के राजा को सहायता के बदले कोटपाड़ परगना देना पड़ा। विद्रोह की समाप्ति के बाद दरियादेव ने 6 अप्रैल 1778 ई. में कोटपाड़ की संधि पर हस्ताक्षर किया, जिसके अनुसार यह क्षेत्र मराठों के अधीन आगया। भविष्य

में यह क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन हो गया।

## भोपालपट्टनम संघर्ष (1795 ई.)

वास्तव में भोपालपट्टनम संघर्ष कोई विद्रोह नही था बल्कि दक्षिण बस्तर के गोंडो द्वारा अप्रैल 1795 ई. में कैप्टन ब्लंट भोपालपट्टनम आने विरोध में इनके काफिले पर हमला था। कैप्टन ब्लंट भोपालपट्टनम के जमींदार के यहां जा रहे थे, इन्हें इद्रावती नदी के तट पर रोक ही दिया गया था, जिसके बाद इन्हें वापस लौटना पड़ा।

## परलकोट विद्रोह (1824 ई. 1825 ई.)

नेतृत्व कर्ता– गेंदसिंह (परलकोट के जमींदार)

शासक– महिपाल देव

कारण– ब्रिटिश और मराठों के उपस्थिति को अबूझमाड़िया लोग अपनी संस्कृति के लिए खतरा समझते थे। ये लोग क्षेत्र में बढ़े हुए कर से परेशान थे।

दमनकर्ता– छत्तीसगढ़ के अधीक्षक मि. एगेन्यू के पहल पर चांदा के पुलिस अधीक्षक कैप्टन पेव द्वारा।

परिणाम– 20 जनवरी 1825 ई. को गेंदसिंह को फांसी दे दी गई और इस तरह से विद्रोह का दमन हो गया।

### संक्षिप्त विवरण

परलकोट विद्रोह, मुख्य रुप से मराठों और अंग्रेजों के आक्रमण के खिलाफ अभुजमारियाओं द्वारा महसूस किए गए आक्रोश का प्रतिनिधि था। इस विद्रोह को अभुजमारियाओं का समर्थन प्राप्त था और इसका नेतृत्व गेंद सिंह (परलकोट के जमींदार) ने किया था।

विद्रोह का एक उद्देश्य लूट, और शोषण से मुक्त विश्व की स्थापना करना था। मराठों और अंग्रेजों की उपस्थिति में अभुजमारियाओं की पहचान को खतरे में डाल दिया और उन्होंने 1825 में परलकोट के विद्रोह का आयोजन करके इसका विरोध किया। विद्रोही मराठा शासकों द्वारा लगाए गए कर का विरोध कर रहे थे। संक्षेप में यह विद्रोह बस्तर के विदेशी हस्तक्षेप और नियंत्रण के खिलाफ निर्देशित था और बस्तर की स्वतंत्रता को फिर से स्थापित करना था।

गेंदसिंह परलकोट के जमींदार थे और इन्हें भूमिया राजा की उपाधि प्राप्त थी। परलकोट जमींदारी बस्तर के उत्तरपश्चिम क्षेत्र में स्थित थी, और यहां की सबसे पुरानी जमींदारियों में से एक थी। इस क्षेत्र में अबूझमाड़ियों लोग निवास करते थे और अपने कला व संस्कृति के साथ आदिम तरीके से जीवन यापन करते थें।

बस्तर के मराठों के अधीन आने के बाद इस क्षेत्र में मराठों, बंजारों और अंग्रेजों की आवाजाही बढ़ने लगी जिससे यहां के मूल निवासी लोग परेशान होने लगे। इनकी आवाजाही को ये अपने निजी जनजीवन में हस्तक्षेप समझने लगे और इसे अपनी संस्कृति के लिए खतरा समझने लगे। कुल मिलकार देखा जाए तो इनकी आवाजाही को ये अपनी स्वतंत्रता पर व्यवधान समझने लगे।

मराठों की अधीनता के कारण बस्तर राज्य द्वारा नागपुर के भोसले शासकों को प्रतिवर्ष 59 हजार टकोली दिया जाता था जिस कारण बस्तर में बेतहाशा कर वृध्दि होने लगी थी और इस चीज से आदिवासी परेशान थे। इसी क्रम में परलकोट क्षेत्र के करों में भी वृद्धि की गई। जैसा कि ज्ञात है आदिवासी स्वतंत्रता प्रिय होते है और उतना ही काम करते है जितने से इनका पेट भर जाए, बाकी समय ये आराम करते है। लेकिन करो में वृध्दि इनके जनजीवन को प्रभावित करने लगी, कर पटाने के लिए इन्हें अपने दिनचर्या के विपरीत अधिक मेहनत करना पड़ रहा था अैर ये सब इन्हें गुलामी की तरह प्रतीत हो रही थी।

इस प्रकार करो में बेतहाशा वृध्दि और जनजीवरन में हस्तक्षेप से परेशान होकर बाहरी लोगों से परलकोट को आजाद कराने के लिए गेंदसिंह के नेतृत्व में अबूझमाड़ियों ने परलकोट में एकत्रित होकर 24 दिसंबर 1824 ई. को विद्रोह का एलान कर दिया और 4 जनवरी 1825 ई. तक चांदा तक फैल गए।

इन्होंने सर्वप्रथम मराठों को रसद पहुंचाने वाले बंजारों को लूटा इसके बाद मराठों और अंग्रेज अधिकारियों पर घात लगाना शुरु कर दिया।

विद्रोह में संकेत के तौर धावड़ा वृक्ष के टहनी का इस्तेमाल किया जाता था, किसी व्यक्ति के द्वारा इस टहनी को किसी वर्गविशेष तक पहुंचाना होता था और उस टहनी के सूखने से पहले उस वर्गविशेष को विद्रोहियों तक पहुंचना होता था।

विद्रोही लोग घोटुल जैसे बैठक के स्थानों पर एकत्रित होते थे और आगे का निर्णय लेते थे फिर अपने दुश्मनों के टुकड़े टुकड़े कर देते थे।

इस विद्रोह से वहां गए मराठों और अंग्रेजों की रुहें कांप गई, जिसके कारण 4 जनवरी 1825 को छत्तीसगढ़ के अधीक्षक मि. एगेन्यू ने चांदा के पुलिस अधीक्षक कैपटन पेव को इन विद्रोहियों के दमन के लिए परलकोट बुलाया गया। इसके बाद अंग्रेजों और मराठों की सेना ने 10 जनवरी 1825 ई. को परलकोट को घेर लिया और गेंदसिंह को गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद इन पर और इनके साथियों पर मुकदमा चलाया था और 20 जनवरी 1825 ई. को इनके महल के सामने ही इन्हें अंग्रेजों द्वारा फांसी दे दी गई।

यह विद्रोह परलकोट की आजादी के लिए था और 1857 ई. के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की क्रांति से 33 वर्ष ही गेंदसिंह के नेतृत्व में हो चुका था। इस तरह से इन्हें बस्तर के साथ–साथ पूरे छत्तीसगढ़ का प्रथम शहीद मान सकते है।

## तारापुर विद्रोह (1824 ई. – 1854 ई.)

नेतृत्व कर्ता– दलगंजन सिंह

शासक– भूपालदेव

कारण– दीवान जगबंधू को हटाने और नए कर को वापस लेने के लिए।

परिणाम– नागपुर के रेजिडेंट मेजर विलियम्स द्वारा आदिवासियों की मांगों को माना गया।

### संक्षिप्त विवरण

बस्तर के राजा भूपालसिंह के भाई दलगंजन सिंह तारापुर परगने का प्रशासक था। यहां की जनता पहले से ही मराठों और उनके बंजारों से परेशान थी ही इसी बीच नागपुर शासक के आदेश पर बस्तर के राजा ने तारापुर में कर की वृध्दि कर दी। इस बात से दलजंगल सिंह और आदिवासी उत्तेजित हो उठे जिस कारण से नए कर को वापस लेने तथा दीवान जगबंधु को हटाने के लिए विद्रोह कर दिया। इसी बीच इन्होंने एक दिवान जगबंधू को कैद कर लिया, लेकिन राजा भूपालदेव के हस्तक्षेप के बाद दलगंजन सिंह ने इन्हे मुक्त कर दिया। दलगंजन सिंह के इस कदम से आदिवासी नाराज हो गए। मुक्त होने के बाद दीवान ने नागपुर की सेना की मदद से आदिवासियों को हरा दिया, इस बीच दलगंजन सिंह की गिरफ्तारी हुई और उन्हें नागपुर के जेल में डाल दिया गया, यहां इन्हें छः माह तक रखा गया। इस बीच जनता के मन व्याप्त अंसतोष को दूर करने के लिए नागपुर के रेजिडेंट मेजर विलियम्स ने जगबुंध दीवान को उसके पद से हटा दिया और नए कर को वापस ले लिया।

## मेरिया विद्रोह (1842 ई. – 1863ई.)

नेतृत्वकर्ता– हिडमा मांझी

शासक– भूपालदेव

कारण– नरबली प्रथा को समाप्त करने के विरोध में (नरबली प्रथा को जारी रखने हेतु)

दमनकर्ता– दीवान वामनराव के सुझाव पर रायपुर के तहसीलदार शेर खां द्वारा।

परिणाम– आदिवासी असफल हुए।

**संक्षिप्त विवरण**

आदिवासी अपनी रुढ़िवादी परंपराओं को लेकर सजग रहते है, इनके अंधविश्वास पर सवाल करना इनके अस्तित्व पर सवाल करने जैसा होता है। बस्तर के दंतेवाड़ा जिले में दन्तेश्वरी देवी का प्रसिद्ध मंदिर है। यहां पर प्राचीन समय में यहां के आदिवासियों द्वारा नरबली दी जाती थीं, जिस व्यक्ति की बलि दी जाती थी उसे मेरिया कहा कहा जाता था। जब इस प्रथा की जानकारी अंग्रेजों को हुई तो इन्होंने इसका विरोध किया और बस्तर सजा को इसे बंद कराने के लिए कहा। दंतेश्वरी मंदिर में इस प्रथा को समाप्त करने के लिए नागपुर भोसले शासकों ने 22 वर्षों (1842ई. 1863ई.) तक यहां अपनी सेना की एक टुकड़ी रखी।

पुरखों से चली आ रही इस प्रथा पर बाहरी लोगों द्वरा रोक लगाने के कारण आदिवासी क्रोधित हो गए और उन्होंने हिडमा मांझी के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। इस प्रथा को समाप्त करने के लिए अंग्रेजों दलगंजन सिंह को हटाकर वामनराव को बस्तर का नया दीवान बनाया। वामनराव के सुझाव पर रायपुर के तहसीलदार शेर खां को इस विद्रोह को दबाने के लिए नियुक्त किया गया। शेर खां के नेतृत्व में दमनकर्ताओं ने विद्रोहियों पर बहुत से जुल्म ढाए, इनके घरों को जला दिए, और इनको स्त्रीयों के साथ दुराचार किए। इस तरह से अंग्रेज इस विद्रोह को दबो में सफल रहें।

## लिंगागिरी का विद्रोह (1856 ई. – 1857 ई.) महान मुक्तिसंग्राम

नेतृत्वकर्ता– धुर्वा राव माड़िया

शासक– भैरमदेव

कारण– अंग्रेजी शासन का बहिष्कार हेतु।

परिणाम– 5 मार्च 1856 ई. को धुर्वा राव को फांसी दे दी गई और इस तरह विद्रोह को समाप्त कर दिया गया।

**संक्षिप्त विवरण**

जैसा कि ज्ञात है कि कोटपाड़ की संधि के बाद बस्तर राज्य नागपुर के भोसले शासको के अधीन हो गया था, लेकिन नागपुर के भोंसले शासक बिम्बाजी तृतीय के पास कोई पुत्र नही होने के कारण 1854 ई. में इनका पुरा राज्य लॉर्ड डहलौजी की हड़प नीति से अंग्रेजों के हाथों चला गया और इस तरह बस्तर राज्य भी अंग्रेजों के अधीन हो गया।

बस्तर के कलासंस्कृति और परंपराओं में अंग्रेजो द्वारा हस्तक्षेप और इनके शोषण से यहां की जनता परेशान थी। अंग्रेजी शासन आदिवासियों के लिए जबरदस्ती का शासन जैसा था, उनकों ऐसा लगता था मानो किसी ने उन पर गुलामी थोप दी हो।

इन सब से त्रस्त होकर भोपालपटटनम जमींदारी के अंतर्गत आने वाले लिंगागिरी तालुके के तालुकेदार धुर्वाराव माड़िया ने अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह कर दिया। 3 मार्च 1856 ई. को चिंतलवार में धुर्वाराव के सैनिकों और अंग्रेजों के बीच युध्द हुआ जिसके बारे में कहा जाता है कि ये सुबह आठ बजे से लेकर दोपहर साढ़े तीन बजे तक चला। इस युद्ध में धुर्वाराव जी घायल हो गए और अंग्रजों के हाथों पकड़े गये। इसके बाद इनकी पत्नि और बच्चों तथा 460 माड़िया औरतों और बच्चों को बंदी बना लिया गया। 5 मार्च 1856 ई. के दिन धुर्वाराव माड़िया को फांसी दे दी गई और इनके तालुके को भोपालपट्टनम के जमींदार को दे दिया गया। धुर्वाराव माड़िया 1857 ई. के क्रांति से एक साल पहले ही अंग्रेजों से लड़ते हुए शहीद हो गये थे। इस तरह से इन्हें हम छत्तीसगढ़ का दूसरा शहीद मान सकते है।

## निष्कर्ष

छत्तीसगढ़ में आदिवासी जनजातियों द्वारा प्रथम (1818) विद्रोह से लेकर वर्तमान समय में अनेक विद्रोह हुए जिसमें आदिवासी जनजातियों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसे पूर भारत वर्ष में सराहा गया। छत्तीसगढ़ के

आदिवासी जनजातियों के द्वारा बलिदान को आज पूरे छत्तीसगढ़ में बलिदान दिवस के रुप मनाया जाता है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एल्विन, वेरियर, (1991) *दि अगारिया,* विनय प्रकाशन, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास।
2. कश्मीरी, श्याम, नारायण, (1947) *छत्तीसगढ़ क्रान्ति की लपटों,* नागपुर सोशलिस्ट पार्टी।
3. गुप्ता, प्यारे लाल, (1973) *प्राचीन छत्तीसगढ़,* रविशंकर वि.वि. प्रकाशन (रायपुर)।
4. ठाकुर, भगवान सिंह, (1986) *छत्तीसगढ़ का इतिहास,* सेन्ट्रल बुक हाऊस, रायपुर।
5. ठाकुर, केदारनाथ, (1982) *बस्तर भूषण अर्थात् बस्तर राज्य का वर्णन,* फुलवारी पारा, रतनपुर।
6. ठाकुर, हरिनारायण, (2001) *छत्तीसगढ़ के रत्न भाग–1* आशीष प्रेस रायपुर 1955–09 तिवारी विजय कुमार, छत्तीसगढ़ का एक भौगोलिक अध्ययन मुंम्बई।
7. तेलंग, बी.आर. (1996) *छत्तीसगढ़ हल्बी बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन,* हिन्दी ग्रन्थ रत्नकार बम्बई।
8. देवगांवकर, एस.जी. कोरम, (1956) *ट्राअबल्स,* नई दिल्ली 1990 नायर टी.बी. दि भील्स ए. स्टडी. नई दिल्ली।
9. नायक, टी.बी. (स) (1970) *छत्तीसगढ़ में गांधी जी,* वि.वि. प्रकाशन रायपुर।
10. नायडु, पी.आर., (1997) *भारत के आदिवासी विकास की समस्याएँ,* राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली।
11. परिहार, दिनेश नंदिनी, (2003) *प्राचीन छत्तीसगढ़ सामाजिक आर्थिक इतिहास,* यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

********